

साहित्यिक अनुसंधान : चुनौतियां और संभावनाएं

डॉ.राजश्री नरवणे

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)

रुकमादेवी पन्नालाल लड्डा माहेश्वरी महाविद्यालय,

इन्दौर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

आधुनिक हिन्दी साहित्य के सूत्रपात और विकास की यह कथा 1850 से प्रारंभ हुई थी। वैसे हिन्दी साहित्य की परम्परा तो लगभग बारह सौ वर्ष पुरानी है, लेकिन उस विशाल परम्परा को व्यक्त करने वाली अवधी और ब्रजबोलियों को छोड़कर सहसा एक नयी उपभाषा खड़ी बोली को अपनाना और 111 वर्ष के अत्यन्त लघुकाल में उसे इतना सम्पन्न बना लेना कि उसमें इतना बहुविध सर्वतोमुखी जायत, सम्पन्न, अत्याधुनिक साहित्य लिखा जाये, यह सचमुच साहित्य के इतिहास की एक विचित्र घटना है। सम्भवतः यह इसीलिए हो सका कि हिन्दी क्षेत्र में एक अदम्य जीवनी शक्ति है जो इतिहास की वेगवान् शक्तियों को आत्मसात् कर अक्षुण्ण बनी रहती है।

प्रस्तावना

हिन्दी सामान्य प्रजाजन की भाषा रही है। यही उसका सबसे बड़ा बल है। साहित्य के इतिहास में यह एक बहुत बड़ी समस्या है कि किसी भी काल का अन्त कहाँ से माना जाये और नये काल का उदय किस तिथि से निर्धारित किया जाये। वास्तव में इस दिशा में तिथियों का निर्धारण बहुत अंश तक प्रतीकात्मक होता है। एक काल की समाप्ति और दूसरे के उदय के बीच में एक बहुत बड़ा संक्रान्ति-काल होता है, जिसमें पुरानी प्रवृत्तियाँ अपनी अवशिष्ट शक्ति लेकर उदीयमान प्रवृत्तियों से उलझती रहती हैं। इस उलझन-भरे युग में से धीरे-धीरे साहित्य के नये रूप और नयी धाराएँ अपने को स्थापित करती रहती हैं।

हिंदी साहित्य का विकास

हिन्दी साहित्य में भी मध्यकाल की समाप्ति कब हो गयी और आधुनिक काल कब शुरू हुआ, इस संबंध में किसी एक तिथि का उल्लेख करना सम्भवतः अपूर्ण और एकांकी होगा। 18वीं शताब्दी के मध्य से ही मध्यकालीन, सामन्तवादी व्यवस्था का पतन होना आरंभ हो गया था और 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ऐसी राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ बनने लगी थीं जिन्होंने समस्त भारतीय जीवन और साहित्य को एक नयी दिशा की ओर उन्मुख किया। पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के संबंध में भारतेंदु का दृष्टिकोण अत्यन्त संतुलित था। ये नये-नये विचारों, नयी-नयी साहित्यिक प्रवृत्तियों को ग्रहण करने में सदैव चेष्टाशील रहते थे। उन्होंने बराबर यह माना कि हमें रूढ़ियों से चिपके नहीं रहना चाहिए। नये विचार और नयी दिशाएँ जहाँ से भी मिलें, उन्हें मुक्त हृदय से स्वीकार करना चाहिए।



उसके लिए न केवल अंग्रेजी वरन् किसी भी भाषा और साहित्य से वे सांस्कृतिक विनिमय स्थापित करने में विश्वास करते थे। उस समय के बहुत-से भारत-प्रेमी अंग्रेजों से उनकी अन्तरंग मित्रता तो थी ही, किन्तु कम लोगों को ज्ञात है कि उन्होंने रूस के जार को भी पत्र लिखे थे और उस समय के सेण्टपीटर्सबर्ग में रूसी भाषा के जो विद्वान भारतीय धार्मिक साहित्य का अध्ययन कर रहे थे, उनसे जीवन्त संपर्क स्थापित करने की चेष्टा की थी। विभिन्न भारतीय भाषाओं से तो उनका प्रत्यक्ष संपर्क था। वैसे भी काशी समस्त देश की विद्वत् परम्परा का केन्द्र रहा है, उस समय तो नवद्वीप के बंगाली पंडित हों, दक्षिण के तेलंग पंडित हो या महाराष्ट्र-गुजरात के आचार्य हों-वे सब भारतेन्दु के आतिथ्य के अधिकारी रहते थे। भारतेन्दु को केन्द्र बनाकर 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी गद्य साहित्य का बहुविध विकास हुआ। सर्वप्रथम उपन्यास श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षागुरु' 1882 ईसवी में प्रकाशित हुआ। उस समय के दो अत्यन्त लोकप्रिय उपन्यासकार थे 'चन्द्रकान्ता के रचयिता लाला देवकीनन्दन खत्री और ऐतिहासिक उपन्यासों के रचयिता किशोरीलाल गोस्वामी। यद्यपि चरित्र-चित्रण की गम्भीरता इन उपन्यासकारों में नहीं थी, किन्तु घटना-प्रवाह और कथा कहने की शैली उस युग को देखते हुए विस्मयकारी थी। हिन्दी समीक्षा का प्रारंभ भी उसी युग में हो गया था। पर उन दिनों की एक विशेषता छोटी-छोटी पत्र-पत्रिकाएं थीं, जिसमें 'हरिशचन्द्र मैगजीन' 'हिन्दी प्रदीप', 'ब्राह्मण' आदि प्रमुख थे। हरिशचन्द्र के जीवन-काल में लगभग 28 पत्र-पत्रिकाएं हिन्दी में प्रकाशित हुई थीं, जिनमें से एक पत्रिका राजा रामपाल सिंह ने विदेश से निकालने का प्रयास

किया था। श्री प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरी नारायण चौधरी, श्रीनिवासदास, राधाचरण गोस्वामी, अयोध्या प्रसाद खत्री आदि प्रख्यात लेखक उस युग में महत्वपूर्ण साहित्य-सृजन कर चुके हैं। आधुनिक साहित्य के इस प्रथम उत्थान पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि आरंभ से ही एक विशिष्ट आत्माभिमान प्रदेशिकता से मुक्त एक अखिल राष्ट्रीय भावना तथा केवल कुछ दिशाओं में सीमित न रहकर सर्वतोमुखी विकास की चेष्टा और समकालीन इतिहास की सक्रिय गति से अन्तरंग संबंध-इस भावभूमि पर हिन्दी का आधुनिक साहित्य-सृजन प्रारंभ हुआ। राष्ट्रीय भावना के विकास से उसका घनिष्ठतम संबंध रहा और आगे वह संबंध और घनिष्ठतर होता गया। द्विवेदी-काल एक प्रकार से सृजनात्मक उपलब्धि में उतना सम्पन्न और वैभवशाली नहीं है जितना कि खड़ी बोली के चतुर्विध परिष्कार और महान् सृजन के लिए उपयुक्त भूमिका तैयार करने में। जहां एक ओर इस बात पर बड़े-बड़े वाद-विवाद हुए कि व्याकरण-सम्मत खड़ी बोली क्या है, हिन्दी की शब्दावली में किस शब्द-समूह का क्या अनुपात रहे, वहीं इसकी ओर भी बराबर ध्यान रहा कि प्रत्येक विषय पर कुछ-न-कुछ जरूर लिखा जाए और जहां से जो कुछ भी अनुवाद कर हिन्दी के पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया जा सके, वह जरूर किया जाये। अंग्रेजी, उर्दू, बांग्ला, मराठी, संस्कृत से बहुत-से अनुवाद इस काल में हुए। उपयोगी विषयों पर भी अधिक-से-अधिक लिखा जाये और अधिक से अधिक पुस्तकें अनूदित की जायें, इसकी ओर एक सामूहिक प्रयास चलता रहा। साहित्यिक अनुसंधान के इस काल में इन अभियानों का प्रभाव यह हुआ कि भारतीय

अन्तर्जगत् अत्यधिक सक्रिय हो उठा। व्यक्ति को एक नयी गरिमा मिली और मन की आन्तरिक परतों में एक नवीन स्फूर्ति जागी। जहां एक ओर भारतीय संस्कृति की अविरत हजारों वर्ष से प्रवहमान धारा के इस नवीन साक्षात्कार ने हमारे मन को अतिशय उल्लास, आलोक और अभिमान से भर दिया, वहीं हमारी विपन्नता, दासता, विदेशियों का निरंकुश अत्याचार मध्यवर्ग की सामाजिक और नैतिक कुण्ठा और बिखराव एक अटल बाधा के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हो गया। इन दोनों अत्यन्त प्रबल स्थितियों के जटिलतम घात-प्रतिघात ने अनुभूतियों का इतना वैविध्य हमारे सामने प्रस्तुत किया कि छायावाद-काल में हम इतने प्रकार की धाराएँ पाते हैं, इतनी संख्या में प्रतिभाओं का उन्मेष पाते हैं और धारा, हर प्रतिभा और हर सृजन अपने स्थान पर अमूल्य प्रतीत होता है। लगता है, जैसे भूगर्भ में हजारों वर्ष से धधकती हुई अग्नि पृथ्वी को फोड़कर बाहर आना चाहे लेकिन जमीन की सतह भी इतनी कड़ी हो कि प्रबलतम आघात पर भी फूटे नहीं ! केवल सैकड़ों पर्वत-श्रेणियों और शिखर रातों-रात उभर आये। कुछ वैसा ही हिन्दी साहित्य के मानस-स्तर में छायावाद-काल में घटित हुआ। प्रत्येक महान् युग के बाद एक ऐसा काल आता है जो अपेक्षाकृत उतना सृजन बहुत नहीं होता। हिन्दी में भी एक ऐसा काल आया। इस छायावादोत्तर काल में चाहे उतने बड़े व्यक्तित्व न उभरे हों, किन्तु साहित्य अनुसंधान की सक्रिय हलचल और दिशा-वैविध्य में बराबर बढ़ोतरी होती चली गयी। काव्य के क्षेत्र में बच्चन, सुमन, अंचल, दिनकर आदि का काव्य-सृजन पनपता रहा। गद्य के क्षेत्र में समूची प्रेमचन्दोत्तर पीढ़ी-जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी,

भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, यशपाल, अशक और अज्ञेय अपने नये कथाकृतित्व से साहित्य को सम्पन्न करते रहे। किन्तु सबसे रोचक प्रगति इस काल में समीक्षा के क्षेत्र में हुई। समीक्षा का यह नया उन्मेष प्रगतिवादी आन्दोलन के कारण हुआ। दोनों महायुद्धों के बीच में एक युग ऐसा था जबकि सारे संसार के बुद्धिजीवी संस्कृति की मार्क्सवादी व्याख्या से बहुत प्रभावित हुए थे और साम्यवादी आन्दोलन के सांस्कृतिक पक्ष के रूप में प्रगतिशील साहित्य का आन्दोलन सभी साहित्यों में पनपा था। इसका एक विशिष्ट परिणाम तो यह हुआ कि कुछ दिनों के लिए ऐसा अनुभव होने लगा कि सृजन की नयी धाराओं के लिए अब कोई भी राह नहीं बची। विचित्र बात यह है कि उस समय की हमारी बाह्य ऐतिहासिक परिस्थिति भी इस साहित्यिक स्थिति से बहुत-कुछ मेल खती थी। हर व्यक्ति उस ऐतिहासिक संकट में बिलकुल अकेला-सा छूट गया था। स्वाधीनता-संग्राम आगे कैसे बढ़ेगा, इसका कोई रास्ता नजर नहीं आता था। इतिहास का एक विचित्र करिश्मा है कि उस समय के साहित्यिक अवरोध को भी जिस पीढ़ी ने आगे चलकर तोड़ा, वह वही पीढ़ी थी जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सन् '42 के महान ऐतिहासिक संकट के आसपास पनपी थी। वह किसी बड़े नायक के बिना सामान्य भारतीय व्यक्ति का शुद्ध असन्तोष, जो अगस्त क्रांति के रूप में सम्मुख आया, उसकी छाया बहुत गहरी होकर हिन्दी साहित्य-सृजन के उस नवोन्मेष पर पड़ी, जो कुछ ही वर्षों बाद नयी कविता, नये कथा-साहित्य, नयी समीक्षा, कुल मिलाकर नवलेखन के रूप में पनपा। हिन्दी का वर्तमान महत्वपूर्ण सक्रिय लेखन यही नवलेखन है, जिसमें

बहुत-सी धाराएं अन्तर्मुख हो गयी हैं। यद्यपि प्रगतिवादी समीक्षक अनुशासकों के कथन अत्यन्त अतिरंजित रहे, धीरे-धीरे निरर्थक होते गये, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने एक बड़ा श्रेयस्कर प्रभाव डाला। उन्होंने जिस स्तर पर जितने बलपूर्वक जीवन और साहित्य के संबंधों की समस्या उठायी, इतिहास की प्रगति और साहित्य की प्रगति के सापेक्ष संबंधों का विश्लेषण किया, उसने नये साहित्य-बोध को समवेत रूप में अत्यन्त जागरूक और इतिहास के प्रति सजग बना दिया। कट्टर मार्क्सवादी सिद्धांत चाहे निरर्थक साबित हुए हों, लेकिन व्यापक रूप में उन्होंने एक नयी चेतना को स्फुरण दिया। एक ओर केवल थोथी भावुकता और अपार्थिव कल्पना-जगत् का मोह छोड़कर यथार्थ को अधिक-से-अधिक समझने और चित्रित करने की प्रवृत्ति नवलेखन में विशेष रूप से आयी। एक बौद्धिक धरातल, विश्लेषणात्मक और समकालीन सत्य के प्रति जागरूकता भी अप्रत्यक्ष रूप से इसी आन्दोलन की देन है। केवल अपनी साहित्य-धारा-या अपने इर्द-गिर्द की घटनाओं में ही न सिमटकर समूचे विश्व-इतिहास के संदर्भ में अपने को खोजने और जांचने का प्रयास तथा समूचे विश्व-मानस के स्पन्दन से अपने साहित्य के आन्तरिक स्पन्दनों का सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा-यह भी उसी आन्दोलन की देन है। आज का जो समकालीन साहित्य है, उनमें इतना अधिक लिखा जा रहा है, इतनी दिशाओं में लिखा जा रहा है कि उसकी एक-एक विधा का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने के लिए इतने ही बड़े-बड़े अलग-अलग निबन्धों की आवश्यकता

होगी। आज एक बहुत विशाल लेखक समुदाय साहित्य की हर विधा को सम्पन्न करने में सक्रिय रूप से संलग्न है। कविता के क्षेत्र में छायावाद एवं छायावादोत्तर काल के लेखक तो अपनी नयी-नयी रचनाएं प्रस्तुत ही कर रहे हैं, साथ ही कतिपय नये गीतकार भी गीतों का लोकप्रिय माध्यम अपनाकर अपने ढंग से कुछ नया देने का प्रयास कर रहे हैं। गद्य के क्षेत्र में विशेष रूप से कथा-साहित्य अत्यन्त सम्पन्न है। हिन्दी का रंगमंच-आंदोलन अभी बहुत बड़े पैमाने पर संगठित नहीं हो पाया है। सुविधा की दृष्टि से अब भी बड़े नाटकों की अपेक्षा छोटे एकांकी लोकप्रिय हैं। रामकुमार वर्मा, अष्क, विष्णु प्रभाकर, सत्येन्द्र शरत, लक्ष्मीनारायण लाल, जगदीशचन्द्र माथुर आदि के एकांकी बहुधा खेले जाते हैं। रंगमंच की दिशा में कुछ अत्यन्त साहसिक प्रयोग किये गये हैं जिन्हें सफलता मिली है। कुछ मिलाकर अधुनातन हिन्दी-समीक्षा का स्वर कहीं अधिक जागरूक और सक्रिय है। कतिपय अध्यापक आलोचक तो बहुत पहले समय से पिछड़ गये थे और अब नवलेखन के रचनाकारों में से ही उभरकर आनेवाले बहुत-से नये समीक्षकों ने हिन्दी आलोचना को एक ऐसा स्वरूप और सक्रियता प्रदान की है जो अन्यत्र दुर्लभ है।

संदर्भ

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य, डा. धर्मवीर भारती
2. साहित्य विचार और स्मृति 84
3. रायल एशियाटिक सोसायटी
4. समकालीन हिन्दी तथा मराठी के ब्रह्म उपन्यास
5. विमर्श के विविध आयाम